५ ト

॥ श्रीहरिः ॥

113

श्रीगोस्वामीतुलसीदासजीरचित

पार्वती मंगल

(सरल भावार्थ सहित)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगोस्वामीतुलसीदासजीरचित

पार्वती-मंगल

(सरल भावार्थसहित)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रथम संस्करणका नम्र निवेदन

जानकी-मंगलमें जिस प्रकार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके साथ जगज्जननी जानकीके मंगलमय विवाहोत्सवका वर्णन है, उसी प्रकार पार्वती-मंगलमें प्रात:स्मरणीय गोस्वामीजीने देवाधिदेव भगवान् शंकरके द्वारा जगदम्बा पार्वतीके कल्याणमय पाणिग्रहणका काव्यमय एवं रसमय चित्रण किया है। लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम एवं राधा-कृष्ण अथवा रुक्मिणी-कृष्णकी भाँति ही गौरी-शंकर भी हमारे परमाराध्य एवं परम वन्दनीय आदर्श दम्पति हैं। लक्ष्मी, सीता, राधा एवं रुक्मिणीकी भाँति ही गिरिराजकिशोरी पार्वती भी अनादि कालसे हमारी पतिव्रताओंके लिये परमादर्श रही हैं; इसीलिये हिंदू कन्याएँ, जबसे वे होश सँभालती हैं, तभीसे मनोऽभिलषित वरकी प्राप्तिके लिये गौरीपूजन किया करती हैं। जगज्जननी जानकी तथा रुक्मिणी भी स्वयंवरसे पूर्व गिरिजा-पूजनके लिये महलसे बाहर जाती हैं तथा वृषभानुकिशोरी भी अन्य गोप-कन्याओंके साथ नन्दकुमारको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये हेमन्त-ऋतुमें बड़े सबेरे यमुना-स्नान करके वहीं यमुना-तटपर एक मासतक भगवती कात्यायनीकी बालुकामयी प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा करती हैं।

जगदम्बा पार्वतीने भगवान् शंकर-जैसे निरन्तर समाधिमें लीन रहनेवाले, परम उदासीन वीतराग-शिरोमणिको कान्तरूपमें प्राप्त करनेके लिये कैसी कठोर साधना की, कैसे-कैसे क्लेश सहे, किस प्रकार उनके आराध्यदेवने उनके प्रेमकी परीक्षा ली और अन्तमें कैसे उनकी अदम्य निष्ठाकी विजय हुई—यह इतिहास एक प्रकाशस्तम्भकी भाँति भारतीय बालिकाओंको पातिव्रत्यके कठिन मार्गपर अडिगरूपसे चलनेके लिये प्रबल प्रेरणा और उत्साह देता रहा है और देता रहेगा। परम पूज्य गोस्वामीजीने अपनी अमर लेखनीके द्वारा उनकी तपस्या एवं अनन्य निष्ठाका बड़ा ही हृदयग्राही एवं मनोरम चित्र खींचा है, जो पाश्चात्त्य शिक्षाके प्रभावसे पाश्चात्त्य आदर्शोंके पीछे पागल हुई हमारी नवशिक्षिता कुमारियोंके लिये एक मनन करने योग्य सामग्री उपस्थित करता है। रामचरितमानसकी भाँति यहाँ भी शिव-बरातके वर्णनमें गोस्वामीजीने हास्यरसका अत्यन्त मधुर पुट दिया है और अन्तमें विवाह एवं विदाईका बड़ा ही मार्मिक एवं रोचक वर्णन करके इस छोटे-से काव्यका उपसंहार किया है।

गोस्वामीजीकी अन्य रचनाओंकी भाँति उनकी यह अमर कृति भी काव्य-रस एवं भक्ति-रससे छलक रही है। इसकी अनुपम माधुरीका आस्वादन करके सभी लोग कृतार्थ हो सकें—इसी भावनासे हमारे स्वर्गीय श्रीइन्द्रदेवनारायणजीने इसकी सुन्दर टीका लिखी थी, जो वर्षोंसे अप्रकाशित पड़ी थी। हमारे प्रिय मुनिलालजी (वर्तमान स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी)-ने बड़े ही प्रेम एवं मनोयोगपूर्वक उसका संशोधन भी कर दिया था; किंतु कई कारणोंसे हमलोग उसे इच्छा रहते भी छाप नहीं पाये थे। भगवान् गौरी-शंकरकी महती कृपासे आज हम उसे मूलसहित प्रकाशित कर प्रेमी पाठक-पाठिकाओंकी सेवामें प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है, गोस्वामीजीकी अन्य मधुरातिमधुर कृतियोंकी भाँति इसे भी जनता आदरपूर्वक अपनायेगी और भगवती उमा एवं भगवान् उमानाथके इस परमपावन मंगलमय चरित्रका अनुशीलन करके अपने अन्त:करणको पवित्र एवं भक्तिरससे आप्लावित करेगी। अज्ञान अथवा दृष्टिदोषसे मूल अथवा अनुवादमें जहाँ-जहाँ भूलें दृष्टिगोचर हों, विज्ञ पाठक उन्हें कृपापूर्वक सुधार लें और हमें भी सूचित कर दें, ताकि उनका अगले संस्करणमें मार्जन किया जा सके।

विनीत—

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

पार्वती-मंगल

बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि॥ १ ॥
गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पाप नसावन पावन मुनि मन भावन॥ २ ॥

गुरुकी, गुणी लोगों (विज्ञजनों)-की, पर्वतराज (हिमालय)-की और गणेशजीकी वन्दना करके फिर जानकीजी और भाथेसहित धनुष धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको स्मरणकर श्रीपार्वती और कैलासपति महादेवजीके मनोहर, पापनाशक, अन्त:करणको पवित्र करनेवाले और मुनियोंके भी मनको रुचिकर लगनेवाले विवाहका गान करता हूँ॥ १-२ ॥

कबित रीति नहिं जानउँ कबि न कहावउँ।
संकर चरित सुसरित मनहि अन्हवावउँ॥ ३ ॥
पर अपबाद-बिबाद-बिदूषित बानिहि।
पावन करौं सो गाइ भवेस भवानिहि॥ ४ ॥

मैं काव्यकी शैलियोंको नहीं जानता और न कवि ही कहलाता हूँ; मैं तो केवल शिवजीके चरित्ररूपी श्रेष्ठ नदीमें मनको स्नान कराता हूँ॥ ३ ॥ और उसी श्रीशंकर एवं पार्वती-चरित्रका गान करके दूसरोंकी निन्दा और वाद-विवादसे मलिन हुई वाणीको पवित्र करता हूँ॥ ४ ॥

जय संबत फागुन सुदि पाँचैं गुरु छिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥ ५ ॥

जय नामक संवत्‌के फाल्गुन मासकी शुक्ला पंचमी बृहस्पतिवारको अश्विनी-नक्षत्रमें मैंने इस मंगल (विवाह-प्रसंग)-की रचना की है, जिसे सुनकर क्षण-क्षणमें सुख प्राप्त होता है॥ ५ ॥

गुन निधानु हिमवानु धरनिधर धुर धनि।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि॥ ६ ॥
कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर।
लीन्ह जाइ जग जननि जनमु जिन्ह के घर॥ ७ ॥
मंगल खानि भवानि प्रगट जब ते भइ।
तब ते रिधि-सिधि संपति गिरि गृह नित नइ॥ ८ ॥

पर्वतोंमें शीर्षस्थानीय गुणोंकी खान हिमवान् पर्वत धन्य हैं, जिनके घरमें त्रिलोकीकी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मैना नामकी पत्नी थी ॥ ६ ॥ कहो ! उनके पुण्यकी किस प्रकार बड़ाई की जाय, जिनके घरमें जगत्‌की माता पार्वतीने जन्म लिया ॥ ७ ॥ जबसे मंगलोंकी खान पार्वतीजी प्रकट हुईं तभीसे हिमाचलके घरमें नित्य नवीन ऋद्धि-सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ निवास करने लगीं ॥ ८ ॥

नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं॥
पितु मातु प्रिय परिवारु हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंदभूषन भालहीं॥ १ ॥

मुनिजन सब प्रकारके नित्य नवीन मंगल और आनन्दमय उत्सव मनाते हैं। ब्रह्मादि देवता, मनुष्य एवं नाग अत्यन्त प्रेमसे हिमवान्‌के सौभाग्यका वर्णन करते हैं। पिता, माता, प्रियजन और कुटुम्बके लोग उन्हें निहारकर आनन्दित होते हैं और उनका (प्रेमसे) लालन-पालन करते हैं। ऐसा लगता था, मानो शुक्ल पक्षमें चन्द्रशेखर भगवान् महादेवजीके ललाटमें चन्द्रमाकी कला वृद्धिको प्राप्त हो रही हो ॥ १ ॥

कुँअरि सयानि बिलोकि मातु-पितु सोचहिं।
गिरिजा जोगु जुरिहि बरु अनुदिन लोचहिं॥ ९ ॥
एक समय हिमवान भवन नारद गए।
गिरिबरु मैना मुदित मुनिहि पूजत भए॥ १० ॥

कुमारी पार्वतीजीको सयानी (वयस्क) हुई देख माता-पिता चिन्तित हो रहे हैं और नित्यप्रति यह अभिलाषा करते हैं कि पार्वतीके योग्य वर मिले ॥ ९ ॥ एक समय नारदजी हिमवान्‌के घर गये। उस समय पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् और मैनाने प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजा की ॥ १० ॥

उमहि बोलि रिषि पगन मातु मेलत भई।
मुनि मन कीन्ह प्रणाम बचन आसिष दई॥ ११॥
कुँअरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहई।
रूप न जाइ बखानि जानु जोइ जोहई॥ १२॥

माता (मैना)-ने पार्वतीको बुलाकर ऋषिके चरणोंमें डाल दिया। मुनि (नारदजी)-ने मन-ही-मन पार्वतीजीको प्रणाम किया और वचनसे आशीर्वाद दिया॥ ११॥ उस समय पिता हिमवान्‌के कंधेसे सटकर खड़ी हुई कुमारी पार्वतीजी बड़ी शोभामयी जान पड़ती थीं। उनके स्वरूपका कोई वर्णन नहीं कर सकता। उसे जिसने देखा वही जान सकता है॥ १२॥

अति सनेहँ सतिभायँ पाय परि पुनि पुनि।
कह मैना मृदु बचन सुनिअ बिनती मुनि॥ १३॥
तुम त्रिभुवन तिहुँ काल बिचार बिसारद।
पारबती अनुरूप कहिय बरु नारद॥ १४॥

अत्यन्त प्रेम और सच्ची श्रद्धासे बार-बार पैरों पड़कर मैनाने कोमल वचनोंमें कहा—'हे मुने! हमारी विनती सुनिये॥ १३॥ आप तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें बड़े ही विचार-कुशल हैं; अतः हे नारदजी! आप पार्वतीके अनुरूप कोई वर बतलाइये'॥ १४॥

मुनि कह चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ।
गिरिबर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ॥ १५॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम सब सुगम भयो बिधि दाहिन॥ १६॥

नारद मुनि कहते हैं कि 'ब्रह्माण्डके चौदहों भुवनोंमें जहाँ-जहाँ मैं घूमता हूँ, हे गिरिश्रेष्ठ हिमवान्! वहाँ-वहाँ तुम्हारी बड़ाई सुनी जाती है॥ १५॥ तुम्हारे समान बड़भागी कहीं कोई नहीं है। तुम्हारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है, सब कुछ सुलभ है; क्योंकि विधाता तुम्हारे अनुकूल सिद्ध हुए हैं'॥ १६॥

दाहिन भए बिधि सुगम सब सुनि तजहु चित चिंता नई।
बरु प्रथम बिरवा बिरचि बिरच्यो मंगला मंगलमई॥

बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही।
हिमवानु कन्या जोगु बरु बाउर बिबुध बंदित सही॥ २ ॥

''ईश्वर तुम्हारे अनुकूल सिद्ध हुए हैं, अतः तुम्हारे लिये सब कुछ सुलभ है''—यह जानकर नवीन चिन्ताओंको त्याग दो। ब्रह्माजीने वर (दुलहा)-रूप पौधेको पहले रचा है और तब मंगलमयी मंगला (पार्वती)-को। (एक बार) तुम्हारी चर्चा ब्रह्मलोकमें भी चल रही थी, उस समय चतुर चतुराननने कहा था कि 'हिमवान्‌की कन्या (पार्वती)-के योग्य वर है तो बावला, परंतु निश्चय ही वह देवताओंसे भी वन्दित (पूजित) है'॥ २ ॥

मोरेहुँ मन अस आव मिलिहि बरु बाउर।
लखि नारद नारदी उमहि सुख भा उर॥ १७॥
सुनि सहमे परि पाइ कहत भए दंपति।
गिरिजहि लगे हमार जिवनु सुख संपति॥ १८॥

''मेरे मनमें भी ऐसी ही बात आती है कि पार्वतीको बावला वर मिलेगा।'' नारदजीके इस वचनको सुनकर उमा (पार्वती)-के हृदयमें सुख हुआ॥ १७॥ किंतु यह बात सुनकर दम्पति (हिमवान्-मैना) सहम गये और (नारदजीके) पैरों पड़कर कहने लगे कि 'पार्वतीके लिये ही हमलोगोंका जीवन और सारी सुख-सम्पत्ति है'॥ १८॥

नाथ कहिय सोइ जतन मिटइ जेहिं दूषनु।
दोष दलन मुनि कहेउ बाल बिधु भूषनु॥ १९॥
अवसि होइ सिधि साहस फलइ सुसाधन।
कोटि कलप तरु सरिस संभु अवराधन॥ २०॥

'अतः हे नाथ! वह उपाय बतलाइये, जिससे (पार्वतीके) इस भाग्य-दोषका नाश हो (जिसके कारण उसे पागल पति मिलनेको है)।' मुनिने कहा कि (सारे) दोषोंको नाश करनेवाले शशिभूषण महादेवजी ही हैं॥ १९॥ उनकी कृपासे सफलता अवश्य प्राप्त होगी। साहस (दृढ़ता)-से ही श्रेष्ठ साधन भी सफल होता है। शिवजीकी आराधना (एक ही) करोड़ों कल्पवृक्षोंके समान 'सिद्धिदायक' है॥ २०॥

तुम्हरें आश्रम अबहिं ईसु तप साधहिं।
कहिअ उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहिं॥ २१॥

कहि उपाय दंपतिहि मुदित मुनिबर गए।
अति सनेहँ पितु मातु उमहि सिखवत भए॥ २२॥

'देखो, तुम्हारे आश्रम (कैलास)-में महादेवजी अभी तप-साधन कर रहे हैं, (अत:) पार्वतीसे कहो कि जाकर मनोयोगपूर्वक शिवजीकी आराधना करे'॥ २१॥ दम्पति (हिमवान्-मैना)-को यह उपाय बतलाकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी आनन्दपूर्वक चले गये और माता-पिताने अत्यन्त स्नेहसे पार्वतीजीको शिक्षा दी॥ २२॥

सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि।
बदति जननि जगदीस जुबति जनि सिरजहि॥ २३॥
जननि जनक उपदेस महेसहि सेवहि।
अति आदर अनुराग भगति मनु भेवहि॥ २४॥

पर्वतराज हिमाचलने तपस्याकी सारी सामग्री सजाकर पार्वतीजीको दे दी। माता कहने लगी कि ईश्वर स्त्रियोंको न रचे (क्योंकि इन्हें सदैव पराधीन रहना पड़ता है)॥ २३॥ माता-पिताने पार्वतीजीको उपदेश दिया कि तुम शिवजीकी आराधना करो और अत्यन्त आदर, प्रेम और भक्तिसे मनको तर कर दो॥ २४॥

भेवहि भगति मन बचन करम अनन्य गति हर चरन की।
गौरव सनेह सकोच सेवा जाइ केहि बिधि बरन की॥
गुन रूप जोबन सींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिएँ।
ते धीर अछत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किएँ॥ ३॥

'भक्तिके द्वारा मनको सरस बना दो।' मनसा-वाचा-कर्मणा पार्वतीजीके एकमात्र श्रीमहादेवजीके ही चरणोंका आश्रय था। उनके गौरव, स्नेह, शील-संकोच और सेवाका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है। पार्वतीजी गुण, रूप एवं यौवनकी सीमा थीं, किंतु ऐसी (अनुपम) सुन्दरीको देखकर शिवजीके मनमें (तनिक भी) क्षोभ नहीं हुआ। (सच है) जो लोग विकारका कारण रहते हुए भी कामदेवको वशमें किये रहते हैं, वे ही (सच्चे) धीर हैं॥ ३॥

देव देखि भल समय मनोज बुलायउ।
कहेउ करिअ सुर काजु साजु सजि आयउ॥ २५॥
बामदेउ सन कामु बाम होइ बरतेउ।
जग जय मद निदरेसि फरु पायसि फर तेउ॥ २६॥

देवताओंने अनुकूल अवसर देखकर कामदेवको बुलाया और कहा कि 'आप देवताओंका काम कीजिये।' यह सुनकर कामदेव साज सजाकर आया॥ २५ ॥ महादेवजीसे कामदेवने प्रतिकूल बर्ताव किया और जगत्को जीत लेनेके अभिमानसे चूर होकर शिवजीका निरादर किया—उसीका फल उसने पाया अर्थात् वह नष्ट हो गया॥ २६ ॥

रति पति हीन मलीन बिलोकि बिसूरति।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति॥ २७॥
आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ॥ २८॥

पतिहीना (विधवा) रतिको मलिन और शोकाकुल देखकर मृदुलस्वभाव, कृपामूर्ति आशुतोष भगवान् नीलकण्ठ (शिवजी)-ने प्रसन्न होकर उसे यह वर दिया—

दोहा—अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥
जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महि भारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

और फिर शिवजी उदासीन हो, उस स्थानको छोड़ अन्यत्र चले गये॥ २७-२८ ॥

उमा नेह बस बिकल देह सुधि बुधि गई।
कलप बेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु दई॥ २९॥
समाचार सब सखिन्ह जाइ घर घर कहे।
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे॥ ३०॥

पार्वतीजी प्रेमवश व्याकुल हो गयीं, उनके शरीरकी सुध-बुध (होश-हवास) जाती रही, मानो वनमें बढ़ती हुई कल्पलताको विषम पालेने मार दिया हो॥ २९ ॥ फिर सखियोंने घर-घर जाकर सारे समाचार सुनाये और इस समाचारको सुनकर माता-पिता एवं घरके लोग दारुण दुःखमें जलने लगे॥ ३० ॥

जाइ देखि अति प्रेम उमहि उर लावहिं।
बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं॥ ३१॥

जौ न होहिं मंगल मग सुर बिधि बाधक।
तौ अभिमत फल पावहिं करि श्रमु साधक॥ ३२॥

वहाँ जाकर पार्वतीको देख वे अत्यन्त प्रेमसे उन्हें हृदय लगाते हैं; विलाप करते हैं तथा वाम विधाताको दोष देते हैं॥ ३१॥ वे कहते हैं कि यदि देवता और विधाता शुभ मार्गमें बाधक न हों तो साधक लोग परिश्रम करके मनोवाञ्छित फल पा सकते हैं॥ ३२॥

साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम को।
को सुनइ काहि सोहाय घर चित चहत चंद्र ललामको॥
समुझाइ सबहि दृढ़ाइ मनु पितु मातु, आयसु पाइ कै।
लागी करन पुनि अगमु तपु तुलसी कहै किमि गाइकै॥ ४॥

सब लोग साधकोंके क्लेश सुनाकर पार्वतीजीको घर चलनेके लिये निहोरा करते हैं। पर (उनकी बात) कौन सुनता है और किसे घर सुहाता है? मन तो चन्द्रभूषण श्रीमहादेवजीको चाहता है। फिर पार्वतीजी सबको समझाकर सबके मनको दृढ़कर और माता-पिताकी आज्ञा पा पुनः कठिन तपस्या करने लगीं; उसे तुलसी गाकर कैसे कह सकता है॥ ४॥

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजा पन।
जेहिं अनुरागु लागु चितु सोइ हितु आपन॥ ३३॥
तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहि गन जनु।
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायो मनु॥ ३४॥

पार्वतीजीकी (दृढ़) प्रतिज्ञाको देखकर माता-पिता और परिजन लौट आये। जिसमें अनुरागपूर्वक चित्त लग जाता है, वही अपना प्रिय है॥ ३३॥ उन्होंने भोगोंको रोगके समान और लोगोंको सर्पोंके झुंडके समान त्याग दिया तथा जो मुनियोंको भी मनके द्वारा अगम्य था, ऐसे तपमें मन लगा दिया॥ ३४॥

सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहिं सरीर हर हेतु अरंभेउ बड़ तपु॥ ३५॥
पूजइ सिवहि समय तिहुँ करइ निमज्जन।
देखि प्रेमु ब्रतु नेमु सराहहिं सज्जन॥ ३६॥

जिस शरीरको स्पर्श करनेमें वस्त्र-आभूषण भी सकुचाते थे, उसी शरीरसे उन्होंने शिवजीके लिये बड़ी भारी तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३५॥ वे तीनों काल स्नान करती हैं और शिवजीकी पूजा करती हैं। उनके प्रेम, व्रत और नियमको सज्जन (साधु)-लोग भी सराहते हैं॥ ३६॥

नीद न भूख पियास सरिस निसि बासरु।
नयन नीरु मुख नाम पुलक तनु हियँ हरु॥ ३७॥
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहि।
सूखे बेलके पात खात दिन गवनहि॥ ३८॥

उनके लिये रात-दिन बराबर हो गये हैं; न नींद है न भूख अथवा न प्यास ही है। नेत्रोंमें आँसू भरे रहते हैं, मुखसे शिव-नाम उच्चारण होता रहता है, शरीर पुलकित रहता है और हृदयमें शिवजी बसे रहते हैं॥ ३७॥ कभी कन्द, मूल, फलका भोजन होता है, कभी जल और वायुपर ही निर्वाह होता है और कभी बेलके सूखे पत्ते खाकर ही दिन बिता दिये जाते हैं॥ ३८॥

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे॥ ३९॥
देखि सराहहिं गिरिजहि मुनिबरु मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहूँ कहु॥ ४०॥

जब पार्वतीजीने (सूखे) पत्तोंको भी त्याग दिया, तब उनका नाम 'अपर्णा' पड़ा। उनकी नवीन, निर्मल एवं मनोरम कीर्तिसे चौदहों भुवन भर गये॥ ३९॥ पार्वतीजीका तप देखकर बहुत-से मुनिवर और मुनिजन उनकी सराहना करते हैं कि ऐसा तप कभी कहीं किसीने न देखा और न तो सुना ही था॥ ४०॥

काहूँ न देख्यौ कहहिं यह तपु जोग फल फल चारि का।
नहिं जानि जाइ न कहति चाहति काहि कुधर-कुमारिका॥
बटु बेष पेखन पेम पनु ब्रत नेम ससि सेखर गए।
मनसहिं समरपेउ आपु गिरिजहि बचन मृदु बोलत भए॥ ५॥

वे कहते हैं कि ऐसा तप किसीने नहीं देखा। इस तपके योग्य फल क्या चार फल अर्थात् अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष (कभी) हो सकते हैं? पर्वतराजकुमारी उमा क्या चाहती हैं; जाना नहीं जाता और न वे कुछ

कहती ही हैं। तब शशिशेखर श्रीमहादेवजी ब्रह्मचारीका वेष बना उनके प्रेम, (कठोर) नियम, प्रतिज्ञा और (दृढ़) संकल्पकी परीक्षा करनेके लिये गये। उन्होंने मन-ही-मन अपनेको पार्वतीजीके हाथों सौंप दिया और पार्वतीजीसे सुमधुर वचन कहने लगे॥ ५॥

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय हृदयँ अस आयउ॥ ४१॥
बंस प्रसंसि मातु पितु कहि सब लायक।
अमिय बचनु बटु बोलेउ अति सुख दायक॥ ४२॥

उस समय पार्वतीजीकी दशा देखकर दयानिधान शिवजी दुःखी हो गये और उनके हृदयमें यह आया कि मेरा स्वभाव (बड़ा ही) कठोर है। [यही कारण है कि मेरी प्रसन्नताके लिये साधकोंको इतना तप करना पड़ता है।] ॥ ४१ ॥ तब वह ब्रह्मचारी पार्वतीजीके वंशकी प्रशंसा करके और उनके माता-पिताको सब प्रकारसे योग्य कह अमृतके समान मीठे और सुखदायक वचन बोला॥ ४२॥

देबि करौं कछु बिनती बिलगु न मानब।
कहउँ सनेहँ सुभाय साँच जियँ जानब॥ ४३॥
जननि जगत जस प्रगटेहु मातु पिता कर।
तीय रतन तुम उपजिहु भव रतनाकर॥ ४४॥

[शिवजीने कहा—] 'हे देवि! मैं कुछ विनती करता हूँ, बुरा न मानना। मैं स्वाभाविक स्नेहसे कहता हूँ, अपने जीमें इसे सत्य जानना॥ ४३॥ तुमने संसारमें प्रकट होकर अपने माता-पिताका यश प्रसिद्ध कर दिया। तुम संसारसमुद्रमें स्त्रियोंके बीच रत्न-सदृश उत्पन्न हुई हो'॥ ४४॥

अगम न कछु जग तुम कहँ मोहि अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ॥ ४५॥
जौं बर लागि करहु तप तौ लरिकाइअ।
पारस जौं घर मिलै तौ मेरु कि जाइअ॥ ४६॥

'मुझे ऐसा जान पड़ता है कि संसारमें तुम्हारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है [यह भी सच है कि] निष्काम तपस्यामें क्लेश नहीं जान पड़ता॥ ४५॥ [परंतु] यदि तुम वर (दुलहा)-के लिये तप करती हो तो यह तुम्हारा

लड़कपन है; क्योंकि यदि घरमें ही पारसमणि मिल जाय तो क्या कोई सुमेरुपर जायगा?॥ ४६ ॥

मोरें जान कलेस करिअ बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहइ रतन की राजहि॥ ४७॥
लखि न परेउ तप कारन बटु हियँ हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखी मुख गौरि निहारेउ॥ ४८॥

'हमारी समझसे तो तुम बिना प्रयोजन ही क्लेश उठाती हो। अमृत क्या रोगीको चाहता है और रत्न क्या राजाकी कामना करता है?'॥ ४७ ॥ इस ब्रह्मचारीको आपके तपका कोई कारण समझमें नहीं आया, यह सोचते-सोचते अपने हृदयमें हार गया है, इस प्रकार उसके प्रिय वचन सुनकर पार्वतीने सखीके मुखकी ओर देखा॥ ४८ ॥

गौरीं निहारेउ सखी मुख रुख पाइ तेहिं कारन कहा।
तपु करहिं हर हितु सुनि बिहँसि बटु कहत मुरुखाई महा॥
जेहिं दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बरु बावरो।
हित लागि कहौं सुभायँ सो बड़ बिषम बैरी रावरो॥ ६ ॥

पार्वतीजीने सखीके मुखकी ओर देखा; तब सखीने उनकी अनुमति जानकर उनके तपका कारण [यह] बतलाया कि वे शिवजीके लिये तपस्या करती हैं। यह सुनकर ब्रह्मचारीने हँसकर कहा कि 'यह [तो तुम्हारी] महान् मूर्खता है।' जिसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है कि जिसके कारण तुमने इतना क्लेश उठाकर बावले वरका वरण किया है, मैं तुम्हारी भलाईके लिये सद्भाववश कहता हूँ कि वह तुम्हारा घोर शत्रु है॥ ६ ॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं॥ ४९॥
भीख मागि भव खाहिं चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच पिसाचिनि जोवहिं॥ ५०॥

'[अच्छा] यह तो बताओ कि क्या सुनकर तुम ऐसे कुलहीन वरपर रीझ गयी, जो गुणरहित, प्रतिष्ठारहित, जातिरहित और माता-पितारहित है॥ ४९ ॥ वे शिवजी तो भीख माँगकर खाते हैं, नित्य [श्मशानमें] चिता

[भस्म] पर सोते हैं, नग्न होकर नाचते हैं और पिशाच-पिशाचिनी इनके दर्शन किया करते हैं'॥ ५०॥

भाँग धतूर अहार छार लपटावहिं।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं॥ ५१॥
सुमुखि सुलोचनि हर मुख पंच तिलोचन।
बामदेव फुर नाम काम मद मोचन॥ ५२॥

'भाँग-धतूरा ही इनका भोजन है; ये शरीरमें राख लपटाये रहते हैं। ये योगी, जटाधारी और क्रोधी हैं; इन्हें भोग अच्छे नहीं लगते'॥ ५१॥ तुम सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली हो, किंतु शिवजीके तो पाँच मुख और तीन आँखें हैं। उनका वामदेव नाम यथार्थ ही है। वे कामदेवके मदको चूर करनेवाले अर्थात् काम-विजयी हैं॥ ५२॥

एकउ हरहिं न बर गुन कोटिक दूषन।
नर कपाल गज खाल ब्याल बिष भूषन॥ ५३॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन॥ ५४॥

'शंकरमें एक भी श्रेष्ठ गुण नहीं है वरं करोड़ों दूषण हैं। वे नरमुण्ड और हाथीके खालको धारण करनेवाले तथा साँप और विषसे विभूषित हैं'॥ ५३॥ कहाँ तो तुम्हारा गुण, शील और शोभायमान स्वरूप और कहाँ शंकरका अमंगल वेष, जो अत्यन्त भयानक है॥ ५४॥

जो सोचइ ससि कलहि सो सोचइ रौरेहि।
कहा मोर मन धरि न बिरय बर बौरेहि॥ ५५॥
हिए हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु।
ब्याह समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु॥ ५६॥

'जो शंकर शशिकलाकी चिन्तामें रहते हैं, वे क्या तुम्हारा ध्यान रखेंगे? मेरे कहे हुए वचनोंको हृदयमें धारणकर तुम बावले वरको न वरना'॥ ५५॥ अपने हृदयमें विचारकर हठ त्याग दो; हठ करनेसे तुम दुःख ही पाओगी और ब्याहके समय हमारी शिक्षाको याद कर-करके पछताओगी॥ ५६॥

पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै।
जम धार सरिस निहारि सब नर-नारि चलिहहिं भाजि कै॥

गज अजिन दिब्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।
कोउ प्रगट कोउ हियँ कहिहि मिलवत अमिय माहुर घोरि कै॥ ७॥

'जिस समय वे भूत-पिशाच और प्रेतोंकी बरात सजाकर आयेंगे' तब तुम्हें पछताना पड़ेगा। उस बरातको यमदूतोंकी सेनाके समान देखकर स्त्री-पुरुष सब भाग चलेंगे। [ग्रन्थिबन्धनके समय] अत्यन्त सुन्दर रेशमी वस्त्रको हाथीके चर्मके साथ जोड़ते हुए सखियाँ मुँह फेरकर हँसेंगी और कोई प्रकट एवं कोई हृदयमें ही कहेगी कि अमृत और विषको घोलकर मिलाया जा रहा है॥ ७॥

तुमहिं सहित असवार बसहँ जब होइहहिं।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं॥ ५७॥
बटु करि कोटि कुतरक जथा रुचि बोलइ।
अचल सुता मनु अचल बयारि कि डोलइ॥ ५८॥

'जब तुम्हारे साथ शिवजी बैलपर सवार होंगे, तब नगरके स्त्री-पुरुष देखकर हँसते हुए अपने मुख छिपा लेंगे'॥ ५७॥ इसी प्रकार अनेकों कुतर्क करके ब्रह्मचारी इच्छानुसार बोल रहा था; परंतु पर्वतकी पुत्रीका मन डिगा नहीं, भला कहीं हवासे पर्वत डोल सकता है?॥ ५८॥

साँच सनेह साँच रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरिस सिंधु रुख सूप सो घेरइ॥ ५९॥
मनि बिनु फनि जल हीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ॥ ६०॥

जो सत्य स्नेह और सच्ची रुचिको फेरना चाहता है, वह [तो] मानो सावनके महीने (वर्षा-ऋतु)-में नदीके प्रवाहको समुद्रकी ओर सूपसे घुमानेकी चेष्टा करता है॥ ५९॥ मणिके बिना सर्प और जलके बिना मछली शरीर त्याग देती है, ऐसे ही जो जिसके साथ प्रेम करता है, वह क्या उसके दोष-गुणका विचार करता है?॥ ६०॥

करन कटुक चटु बचन बिसिष सम हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए॥ ६१॥
बोली फिर लखि सखिहि काँपु तन थर थर।
आलि बिदा करु बटुहि बेगि बड़ बरबर॥ ६२॥

ब्रह्मचारीके कर्णकटु चाटु वचनोंने पार्वतीजीके हृदयमें तीरके समान आघात किया? उनकी आँखें लाल हो गयीं, भृकुटियाँ तन गयीं और होंठ फड़कने लगे॥ ६१॥ उनका शरीर थर-थर काँपने लगा। फिर उन्होंने सखीकी ओर देखकर कहा—'अरी आली! इस ब्रह्मचारीको शीघ्र बिदा करो, यह [तो] बड़ा ही अशिष्ट है'॥ ६२॥

कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि कैं अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि॥ ६३॥
दोष निधान इसानु सत्य सबु भाषेउ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ॥ ६४॥

[फिर ब्रह्मचारीको सम्बोधित करके कहने लगीं—] 'कहीं कोई चतुर स्त्रियाँ होंगी, वे आपकी शिक्षा सुनेंगी, मैं तो बावलेके प्रेममें ही अत्यन्त बावली हो गयी हूँ'॥ ६३॥ आपने जो कहा कि महादेवजी दोषनिधान हैं, सो सब सत्य ही कहा है; परंतु विधाताने जो अंक लिख रखे हैं, उन्हें कौन मिटा सकता है?॥ ६४॥

को करि बादु बिबादु बिषादु बढ़ावइ।
मीठ काहि कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ॥ ६५॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहिं।
बकि जनि उठहिं बहोरि कुजुगुति सवाँरहिं॥ ६६॥

'वाद-विवाद करके कौन दुःख बढ़ाये? कवि किसको मीठा कहते हैं? जिसको जो अच्छा लगता है'। (भाव यह कि जिसको जो अच्छा लगे, उसके लिये वही मीठा है।) [फिर सखीसे बोली—] हे सखी! इनसे कहो बहुत देर हो गयी है, अब अपने कामके लिये कहीं जायँ। देखो, किसी कुयुक्तिको रचकर फिर कुछ न बक उठें॥ ६५-६६॥

जनि कहहिं कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की।
सिव साधु निंदकु मंद अति जोउ सुनै सोउ बड़ पातकी॥
सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भए प्रगट करुनासिंधु संकरु भाल चंद सुहावनो॥ ८॥

'ये प्रीतिकी तो क्या, बात करनेकी रीति भी नहीं जानते; अतएव कोई विपरीत बात [फिर] न कहें। शिवजी और साधुओंकी निन्दा करनेवाले अत्यन्त

मन्द अर्थात् नीच होते हैं; उस निन्दाको जो कोई सुनता है, वह भी बड़ा पापी होता है।' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि इस वचनको सुन उनका सत्य, दृढ़ और पवित्र प्रेम जानकर करुणासिन्धु श्रीमहादेवजी प्रकट हो गये; उनके ललाटमें चन्द्रमा शोभायमान हो रहा था॥ ८॥

सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ॥ ६७॥
सैल कुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हियँ हरषु पुलक तन पूरति॥ ६८॥

उनके कमनीय गौर शरीरपर विभूति अत्यन्त शोभित हो रही थी; उनके नेत्र और ललाट विशाल थे तथा मुख मनको मोहित किये लेता था॥ ६७॥ उनकी मनोहर मूर्तिको निहारकर शैलकुमारी पार्वतीजीके नेत्रोंमें जल भर आया। हृदयमें आनन्द छा गया और शरीर पुलकावलीसे व्याप्त हो गया॥ ६८॥

पुनि पुनि करै प्रनामु न आवत कछु कहि।
देखौं सपन कि सौतुख ससि सेखर सहि॥ ६९॥
जैसें जनम दरिद्र महामनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ॥ ७०॥

वे बारंबार प्रणाम करने लगीं। उनसे कुछ कहते नहीं बनता था। [वे मन-ही-मन] विचारती हैं कि मैं स्वप्न देख रही हूँ या सचमुच सामने शिवजीका दर्शन कर रही हूँ॥ ६९॥ जिस प्रकार जन्मका दरिद्री महामणि (पारस) को पा जाय और उसके प्रभावको साक्षात् देखते हुए भी उसमें विश्वास न हो [उसी प्रकार यद्यपि पार्वतीजी महादेवजीको नेत्रोंके सामने देखती हैं तो भी उन्हें प्रतीति नहीं होती]॥ ७०॥

सुफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि।
घर ते खेलन मनहुँ अबहिं आई उठि॥ ७१॥
देखि रूप अनुराग महेस भए बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह सुधा रस॥ ७२॥

पार्वतीजीका मनोरथ सफल हो गया, [इससे वे और भी] सुहावनी लगती हैं। [जान पड़ता है कि] मानो खेलनेके लिये वे अभी घरसे उठकर

आयी हों। [उनकी देहमें तपका क्लेश और कृशता आदि कुछ भी लक्षित नहीं होता] ॥ ७१ ॥ पार्वतीजीके रूप और अनुरागको देखकर महादेवजी उनके वशमें हो गये और मानो प्रेमामृतमें सानकर वचन बोले ॥ ७२ ॥

हमहि आजु लगि कनउड़ काहुँ न कीन्हेउ।
पारबती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ ॥ ७३ ॥
अब जो कहहु सो करउँ बिलंबु न एहिं घरी।
सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पायन्ह परी ॥ ७४ ॥

[शिवजी कहते हैं कि] 'हमको आजतक किसीने कृतज्ञ नहीं बनाया; परंतु हे पार्वती! तुमने तो अपने तप और प्रेमसे मुझे मोल ले लिया ॥ ७३ ॥ अब तुम जो कहो, मैं इसी क्षण वही करूँगा, विलम्ब नहीं होने दूँगा।' शिवजीके [ऐसे] कोमल वचन सुनकर पार्वतीजी पुलकित हो उनके पैरोंपर गिर पड़ीं ॥ ७४ ॥

परि पायँ सखि मुख कहि जनायो आपु बाप अधीनता।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता ॥
हर हृदयँ धरि घर गौरि गवनी कीन्ह बिधि मन भावनो।
आनंदु प्रेम समाजु मंगल गान बाजु बधावनो ॥ ९ ॥

पार्वतीजीने उनके पैरों पड़कर सखीके द्वारा अपना पिताके अधीन होना सूचित किया, तब शिवजी उनका परितोष करके उनकी प्रीति एवं नीतिनिपुणताका वर्णन करते चले गये। इधर पार्वतीजी भी शिवजीको हृदयमें धारणकर घर चली गयीं। विधाताने सब कुछ उनके मनके अनुकूल कर दिया। [फिर तो] आनन्द और प्रेमका समाज जुट गया, मंगलगान होने लगा और बधावा बजने लगा ॥ ९ ॥

सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि।
कीन्ह संभु सनमानु जन्म फल पाइन्हि ॥ ७६ ॥
सुमिरहिं सकृत तुम्हहि जन तेइ सुकृती बर।
नाथ जिन्हहि सुधि करिअ तिनहिं सम तेइ हर ॥ ७६ ॥

तब शिवजीने सप्तर्षियों (कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, विश्वामित्र, वसिष्ठ, भरद्वाज और गौतम)-को स्मरण किया। उन्होंने आकर शिवजीको सिर नवाया। शिवजीने उनका सम्मान किया और उन्होंने भी [शिवजीका दर्शन करके]

जन्मका फल पा लिया॥ ७५॥ [सप्तर्षियोंने कहा कि] 'जो लोग एक बार भी आपका स्मरण कर लेते हैं, वे ही पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ हैं।' हे नाथ! हे हर! [फिर] जिसे आप स्मरण करें, उसके समान तो वही है॥ ७६॥

सुनि मुनि बिनय महेस परम सुख पायउ।
कथा प्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ॥ ७७॥
जाहु हिमाचल गेह प्रसंग चलायहु।
जौं मन मान तुम्हार तौ लगन धरायहु॥ ७८॥

मुनियोंकी विनय सुनकर शिवजीने परम सुख प्राप्त किया और उन मुनीश्वरोंको सब कथाका प्रसंग सुनाया॥ ७७॥ [और कहा कि] 'तुमलोग हिमाचलके घर जाओ और इसकी चर्चा चलाकर यदि जँच जाय तो लग्न धरा आना'॥ ७८॥

अरुंधती मिलि मनहिं बात चलाइहि।
नारि कुसल इहिं काज काजु बनि आइहि॥ ७९॥
दुलहिनि उमा ईसु बरु साधक ए मुनि।
बनिहि अवसि यहु काजु गगन भइ अस धुनि॥ ८०॥

[इसी अवसर] आकाशवाणी हुई कि वसिष्ठपत्नी अरुन्धती मैनासे मिलकर बात चलायेंगी। स्त्रियाँ इस काम (बरेखी)-में कुशल होती हैं, [अतः] काम बन जायगा॥ ७९॥ उमा (पार्वतीजी) दुलहिन हैं और शिवजी (वर) दुलहा हैं। ये मुनिलोग साधक हैं; अतः यह काम अवश्य बन जायगा॥ ८०॥

भयउ अकनि आनंद महेस मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिएँ सीसन्ह॥ ८१॥
सिव सो कहेउ दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ।
चले मुदित मुनिराज गए गिरिबर पहँ॥ ८२॥

शिवजी और मुनियोंको आकाशवाणी सुननेसे आनन्द हुआ। सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ सिरपर कलश लिये [शुभ] शकुन सूचित करती हैं॥ ८१॥ शिवजीने महर्षियोंको वह दिन और स्थान बतलाया, जहाँ फिर मिलना हो सकता था; तब वे मुनिश्रेष्ठ आनन्द होकर गिरिराज (हिमवान्)-के पास चलकर पहुँचे॥ ८२॥

गिरि गेह गे अति नेहँ आदर पूजि पहुँनाई करी।
घरवात घरनि समेत कन्या आनि सब आगें धरी॥
सुखु पाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै।
रिषि सात प्रातहिं चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै॥ १०॥

जब सप्तर्षि हिमवान्‌के घर गये, तब हिमवान्‌ने स्नेह एवं आदरपूर्वक पूजकर उनकी पहुनाई की और पत्नी एवं कन्यासहित घरकी सारी सामग्री लाकर उनके आगे रख दी। तब [पूजा आदिसे] आनन्दित हो विवाहकी बात चली और हिमवान्‌को समझाकर शुभ दिन शोधन करा प्रातःकाल ही सातों ऋषि सुन्दर लग्न लिखवाकर आनन्दपूर्वक [वहाँसे] चले॥ १०॥

बिप्र बृंद सनमानि पूजि कुल गुर सुर।
परेउ निसानहिं घाउ चाउ चहुँ दिसि पुर॥ ८३॥
गिरि बन सरित सिंधु सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिबर नायक नेवत पठायउ॥ ८४॥

हिमवान्‌ने ब्राह्मणोंका सम्मान करके कुलगुरु और देवताओंकी पूजा की। नगारोंपर चोट पड़ने लगी और नगरमें चारों ओर उमंग छा गयी॥ ८३॥ पर्वत, वन, नदी, समुद्र और सरोवर जिन-जिनके विषयमें सुना उन सभीको सभी श्रेष्ठ पर्वतोंके नायक हिमाचलने न्योता भेज दिया॥ ८४॥

धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिएँ।
चवँर चीर उपहार हार मनि गन लिएँ॥ ८५॥
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन।
हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन॥ ८६॥

वे सब-के-सब सुन्दर वेष बना-बनाकर उपहारके लिये चँवर, वस्त्र, हार और मणिगण लिये हृदयमें हर्षित हो चले॥ ८५॥ हिमवान्‌ने प्रमुदित होकर [कुशल कारीगरोंको] मण्डप बनानेकी आज्ञा दी और विवाहिता लड़कियाँ मंगल गान करने लगीं॥ ८६॥

तोरन कलस चवँर धुज बिबिध बनाइन्हि।
हाट पटोरन्हि छाय सफल तरु लाइन्हि॥ ८७॥
गौरी नैहर केहि बिधि कहहु बखानिय।
जनु रितुराज मनोज राज रजधानिय॥ ८८॥

अनेक प्रकारके बंदनवार, कलश, चँवर और ध्वजा-पताकाएँ बनायी गयीं, बाजारको रेशमी वस्त्रोंसे छाकर [बीच-बीचमें] फलयुक्त वृक्ष लगाये गये॥ ८७॥ पार्वतीजीके नैहरका कहिये, किस प्रकार वर्णन किया जाय! वह तो मानो वसन्त और कामदेवके राज्यकी राजधानी ही थी॥ ८८॥

जनु राजधानी मदन की बिरची चतुर बिधि और हीं।
रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथकि ठौरहिं ठौर हीं॥
एहि भाँति ब्याह समाज सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद रँग मगे॥ ११॥

मानो चतुर विधाताने कामदेवकी राजधानीको और ही (अलौकिक) ढंगसे रचा है। उसकी विचित्र रचनाको देखकर नेत्र जहाँ जाते हैं, वहीं ठिठककर रह जाते हैं। इस प्रकार विवाहका साज सजाकर हिमवान् बरातका रास्ता देखने लगे। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मुनियोंने शिवजीको लग्नपत्रिका लेकर दी। इससे शिवजी आनन्दोत्सवमें मग्न हो गये॥ ११॥

बेगि बोलाइ बिरंचि बचाइ लगन जब।
कहेन्हि बिआहन चलहु बुलाइ अमर सब॥ ८९॥
बिधि पठए जहँ तहँ सब सिव गन धावन।
सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन॥ ९०॥

शिवजीने तुरंत ही ब्रह्माजीको बुलवाकर जब लग्नपत्रिका पढ़वायी, तब उन्होंने कहा कि 'सब देवताओंको बुलवाकर विवाहके लिये चलो।' ब्रह्माने जहाँ-तहाँ शिवजीके गणोंको धावन (दूत) बनाकर भेजा। यह समाचार सुनकर देवतालोग प्रसन्न हुए और नगारे बजानेको कहने लगे॥ ८९-९०॥

रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावहिं भले।
निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले॥ ९१॥
मुदित सकल सिव दूत भूत गन गाजहिं।
सूकर महिष स्वान खर बाहन साजहिं॥ ९२॥

वे सँवारकर विमानोंको सजाने लगे। उस समय अच्छे-अच्छे शकुन होने लगे। इस प्रकार अपने-अपने साज-समाजको सजाकर देवतालोग चल दिये॥ ९१॥ शिवजीके समस्त दूत और भूतगण अत्यन्त आनन्दित होकर गरज रहे हैं

और सुअर, भैंसे, कुत्ते, गदहे आदि [अपने-अपने] वाहनोंको सजाते हैं॥ ९२॥

नाचहिं नाना रंग तरंग बढ़ावहिं।
अज उलूक बृक नाद गीत गन गावहिं॥ ९३॥
रमानाथ सुरनाथ साथ सब सुर गन।
आए जहँ बिधि संभु देखि हरषे मन॥ ९४॥

वे अनेक प्रकारसे नाचते हैं और आनन्दकी उमंगको और भी बढ़ाते हैं। बकरे, उल्लू, भेड़िये शब्द कर रहे हैं और शिवजीके गण गीत गाते हैं॥ ९३॥ [इसी समय] लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र समस्त देवताओंके साथ जहाँ ब्रह्माजी एवं शंकरजी थे, वहाँ आये और उन्हें देखकर अपने मनमें [बहुत] प्रसन्न हुए॥ ९४॥

मिले हरिहिं हरु हरषि सुभाषि सुरेसहि।
सुर निहारि सनमानेउ मोद महेसहि॥ ९५॥
बहु बिधि बाहन जान बिमान बिराजहिं।
चली बरात निसान गहागह बाजहिं॥ ९६॥

देवराज इन्द्रसे मधुर वचन कहकर श्रीमहादेवजी प्रसन्न हो श्रीविष्णुभगवान्‌से मिले और देवताओंकी ओर देखकर उन्हें सम्मानित किया। इससे शिवजीको बड़ा आनन्द हुआ॥ ९५॥ [उस समय] बहुत प्रकारसे वाहन, यान और विमान शोभायमान हो रहे थे। फिर बरात चली और धड़ाधड़ नगारे बजने लगे॥ ९६॥

बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधुभूषन चले।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर सगुन सुभ मंगल भले॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे।
गज छाल ब्याल कपाल माल बिलोकि बर सुर हरि हँसे॥ १२॥

आकाशमें नगारे बजने लगे और गानेका मधुर शब्द होने लगा। शिवजी बैलपर चढ़कर चले। देवतालोग जय-जयकार करने और फूल बरसाने लगे तथा शुभसूचक अच्छे-अच्छे शकुन होने लगे। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि महादेवजीके साथ भूत, प्रेत, पिशाच—ये ही बरातियोंके रूपमें शोभायमान हो रहे थे। [उस समय] वरको गज-चर्म, सर्प और मुण्डमालासे विभूषित देखकर देवतालोग और विष्णुभगवान् हँसने लगे॥ १२॥

बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ॥ ९७ ॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथ गन राजहिं।
बिबिध भाँति मुख बाहन बेष बिराजहिं॥ ९८ ॥

भगवान्‌ने देवताओंको बुलाकर कहा कि 'अब नगर निकट आ गया है, अतः सबलोग अपने-अपने समाजको अलग-अलग कर लो'॥ ९७॥ इस समय भूतनाथके साथ भूतगण शोभायमान हैं, जो अनेक प्रकारके मुख, वेष और वाहनोंसे विराजमान हो रहे हैं॥ ९८॥

कमठ खपर मढि खाल निसान बजावहिं।
नर कपाल जल भरि-भरि पिअहिं पिआवहिं॥ ९९ ॥
बर अनुहरत बरात बनी हरि हँसि कहा।
सुनि हियँ हँसत महेस केलि कौतुक महा॥ १००॥

वे कछुओंके खपड़ेको खालसे मँढ़कर उन्हींको नगारोंके रूपमें बजाते हैं और मनुष्यकी खोपड़ीमें जल भर-भरकर पीते और पिलाते हैं॥ ९९ ॥ तब भगवान् विष्णुने हँसकर कहा कि दुलहाके योग्य ही बरात बनी है, यह सुनकर शिवजी हृदयमें हँसते हैं। इस प्रकार खूब क्रीडा-कौतुक हो रहा है॥ १००॥

बड़ बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत॥ १०१॥
पुर खरभर उर हरषेउ अचल अखंडलु।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधु मंडलु॥ १०२॥

मार्गमें बड़ा विनोद हो रहा है, उस समयका आनन्द कुछ कहनेमें नहीं आता। बरात बाजे बजाती हुई नगरके निकट पहुँच गयी॥ १०१॥ नगरमें खलबली पड़ गयी और सम्पूर्ण हिमाचल पर्वत (राज्यभर) हृदयमें आनन्दित हो गया, मानो पूर्णिमाके समय चन्द्रमण्डलको देखकर समुद्र उमड़ गया हो॥ १०२॥

प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहि।
भभरे बनइ न रहत न बनइ परातहि॥ १०३॥
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत॥ १०४॥

स्वागत करनेवाले प्रसन्न होकर आगे गये, परंतु बरातको देखकर घबरा गये। उस समय उनसे न तो रहते बनता था और न भागते ही॥ १०३॥ हाथी, घोड़े भाग चले, वे लौटानेसे भी नहीं लौटते, बालक भी घबराहटके मारे भटक गये, वे घर खोजते फिरते हैं॥ १०४॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब।
घर घर बालक बात कहन लागे तब॥ १०५॥
प्रेत बेताल बराती भूत भयानक।
बरद चढ़ा बर बाउर सबइ सुबानक॥ १०६॥

अगवानोंने बरातियोंको जनवासा दिया और सब प्रकारके सुपास (ठहरनेके लिये स्थान)-की व्यवस्था कर दी, तब सब बालक घर-घर पहुँचकर कहने लगे— ॥ १०५॥ 'प्रेत, बेताल और भयंकर भूत बराती हैं तथा बावला वर बैलपर सवार है। इस प्रकार सभी बानक दुलहेके योग्य ही बना है (अर्थात् सारा साज-समाज ही विपरीत है)'॥ १०६॥

कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिअ।
देखब कोटि बिआह जिअत जौं बाँचिअ॥ १०७॥
समाचार सुनि सोचु भयउ मन मयनहिं।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं॥ १०८॥

'हम सत्य कहते हैं—ईश्वर कुशल करें, जो जीते बच गये तो करोड़ों ब्याह देखेंगे'॥ १०७॥ इस समाचारको सुनकर मैनाके मनमें [बड़ा] सोच हुआ। [वे कहने लगीं कि] नारदके उपदेशसे कौन घर नष्ट नहीं हुआ॥ १०८॥

घर घाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी॥
उर लाइ उमहि अनेक बिधि जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई॥ १३॥

'नारदजीको कहते तो परम परोपकारी हैं, परंतु ये हैं घरको नष्ट करनेवाले, धूर्त्त और कलहप्रिय। सप्तर्षियोंने विवाह-सम्बन्धी बातचीत भी वैसी ही की, वे भी [पूरे] स्वार्थसाधक ही निकले।' इस प्रकार माता मैना पार्वतीजीको हृदयसे लगाकर अनेक प्रकारकी कल्पना करने लगी और अत्यन्त दुःख मानने लगी। तब हिमवान्‌ने कहा कि शिवजीकी

महिमा अगम्य है, उसे वेद भी नहीं जानता॥ १३ ॥

सुनि मैना भइ सुमन सखी देखन चली।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली॥ १०९ ॥
श्रीपति सुरपति बिबुध बात सब सुनि सुनि।
हँसहिं कमल कर जोरि मोरि मुख पुनि पुनि॥ ११० ॥

हिमवान्‌के वचन सुनकर मैनाका मन कुछ स्वस्थ हुआ अर्थात् उसके मनमें सान्त्वना हुई। उस समय जहाँ-तहाँ बाजार, चौक एवं गलियोंमें बरातकी ही चर्चा चल रही थी॥ १०९ ॥ उसे सुन-सुनकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र तथा [अन्य] देवतालोग कमलके समान हाथोंको जोड़कर (अर्थात् मुखमण्डलको हाथोंसे ढककर) बार-बार मुँह फेरकर हँसते थे॥ ११० ॥

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुंदर सत कोटि मनोज मनोहर॥ १११ ॥
नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन॥ ११२ ॥

तब श्रीमहादेवजी लौकिक गतिको देखते हुए उस समय बड़ा कोलाहल जान सौ करोड़ कामदेवोंसे भी अधिक सुन्दर और मनोहर हो गये॥ १११ ॥ उनका गजचर्म नीलाम्बर हो गया और जितने सर्प थे, वे मणिमय आभूषण हो गये। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके रोम-रोमपर सुन्दर रूपमय सूर्य प्रकाशित हो रहे हों॥ ११२ ॥

गन भए मंगल बेष मदन मन मोहन।
सुनत चले हियँ हरषि नारि नर जोहन॥ ११३ ॥
संभु सरद राकेस नखत गन सुर गन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुर जन॥ ११४ ॥

शिवजीके गणोंका वेष भी मंगलमय हो गया और वे अपने सौन्दर्यसे कामदेवके भी मनको मोहने लगे। यह सुनकर [सभी] स्त्री-पुरुष हृदयमें आनन्दित होकर उन्हें देखनेके लिये चले॥ ११३ ॥ [उस समय ऐसा जान पड़ता था] मानो शिवजी शारदी पूर्णिमाके चन्द्रमा हैं, देवतालोग नक्षत्रोंके समान हैं तथा उन्हें देखनेके लिये उनके चारों ओर

पुरवासीलोग चकोरसमुदायकी भाँति सुशोभित हो रहे थे॥ ११४॥

गिरबर पठए बोलि लगन बेरा भई।
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लई॥ ११५॥
होहिं सुमंगल सगुन सुमन बरषहिं सुर।
गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर॥ ११६॥

लग्नका समय होनेपर गिरिवर हिमवान्‌ने बरातियोंको बुलावा भेजा और उन्हें मंगलमय अर्घ्य और पाँवड़े देते साथ ले चले॥ ११५॥ [चलनेके समय] मंगलमय शकुन होते हैं और देवतालोग फूलोंकी वर्षा करते हैं। आनन्दपूर्ण गान और नगारोंका निनाद होने लगा और नगर आनन्द एवं मंगलसे पूर्ण हो गया॥ ११६॥

पहिलिहिं पवरि सुसामध भा सुख दायक।
इति बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक॥ ११७॥
मनि चामीकर चारु थार सजि आरति।
रति सिहाहिं लखि रूप गान सुनि भारति॥ ११८॥

पहली ही पौरीपर समधियोंका सुखदायक सम्मिलन हुआ। इधर ब्रह्माजी थे और उधर हिमवान् थे। दोनों ही समान और सब प्रकारसे योग्य थे॥ ११७॥ फिर मणि और सोनेके सुन्दर थालमें आरती सजाकर स्त्रियाँ चलीं। उनके रूपको देखकर कामपत्नी रति और गान श्रवणकर सरस्वती भी ईर्ष्या करने लगती थीं॥ ११८॥

भरी भाग अनुराग पुलकि तन मुद मन।
मदन मत्त गजगवनि चलीं बर परिछन॥ ११९॥
बर बिलोकि बिधु गौर सुअंग उजागर।
करति आरती सासु मगन सुख सागर॥ १२०॥

शरीरसे पुलकित और मनमें आनन्दित हो वे भाग्य और प्रेमसे भरी प्रेमके आवेशमें मत्त गजगामिनी कामिनियाँ वर (दूलह)-का परिछन (पूजन) करने चलीं॥ ११९॥ वरको चन्द्रमाके समान गौर और अंग-अंगमें प्रकाशपूर्ण देखकर सास (मैना) सुखसागरमें मग्न हो आरती उतारने लगीं॥ १२०॥

सुख सिंधु मगन उतारि आरति करि निछावर निरखि कै।
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चलीं मंडप हरषि कै॥
हिमवान दीन्हें उचित आसन सकल सुर सनमानि कै।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडप आनि कै॥ १४॥

सासने सुख-सिन्धुमें मग्न होकर आरती उतारी और फिर निछावर करके वरकी ओर देखकर मार्गमें अर्घ्य और पाँवड़े देतीं फूलसे लदे हुए वरको आनन्दपूर्वक मण्डपमें ले चलीं। हिमवान्‌ने सभी देवताओंका सम्मान करके उन्हें उचित आसन दिये। उस समयका जो कुछ साज-समाज था, वह सब सुन्दर मण्डपमें लाकर रखा गया॥ १४॥

अरघ देइ मनि आसन बर बैठायउ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अचवायउ॥ १२१॥
सप्त रिषिन्ह बिधि कहेउ बिलंब न लाइअ।
लगन बेर भइ बेगि बिधान बनाइअ॥ १२२॥

वरको अर्घ्य देकर मणिजटित आसनपर बैठाया गया और फिर पूजा करके मधुपर्क खिलानेकी रीति पूरी की गयी तथा आचमन कराया गया॥ १२१॥ तत्पश्चात् ब्रह्माने सप्तर्षियोंसे कहा कि 'विलम्ब न करो, लग्नका समय हो गया है। शीघ्र ही सब विधियाँ सम्पन्न करो'॥ १२२॥

थापि अनल हर बरहि बसन पहिरायउ।
आनहु दुलहिनि बेगि समय अब आयउ॥ १२३॥
सखी सुआसिनि संग गौरि सुठि सोहति।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति॥ १२४॥

तब अग्नि-स्थापना करके दूल्हे (श्रीशिवजी)-को वस्त्र पहनाया गया और कहा गया कि 'शीघ्र ही दुलहिनको लाओ, अब समय आ गया है'॥ १२३॥ उस समय सखियों और ब्याही हुई [अन्य] लड़कियोंके साथ पार्वतीजी अत्यन्त सुशोभित थीं, मानो सौन्दर्य-मूर्ति प्रकट होकर जगत्‌को मोह रही हो॥ १२४॥

भूषन बसन समय सम सोभा सो भली।
सुषमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली॥ १२५॥
कहहु काहि पटतरिय गौरि गुन रूपहि।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि॥ १२६॥

समयके अनुकूल वस्त्र और आभूषणोंकी खूब शोभा हो रही है, मानो शोभाकी नवीन लतिका रूपमय फलोंसे फली हुई है॥ १२५॥ कहो, पार्वतीजीके गुणों एवं रूपकी तुलना किससे की जाय! समुद्रको किस प्रकार तालाब और कुएँके बराबर बतलाया जाय!॥ १२६॥

आवत उमहि बिलोकि सीस सुर नावहिं।
भव कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं॥ १२७॥
बिप्र बेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि लहि॥ १२८॥

पार्वतीजीको आते देखकर देवतालोग सिर नवाते हैं और अपना जन्म कृतार्थ हुआ जानकर सुखी होते हैं॥ १२७॥ ब्राह्मणलोग आशीर्वाद दे-देकर वेदकी ध्वनि कर रहे हैं और समय-समयपर गान एवं नगारोंकी ध्वनि तथा फूलोंकी वर्षा हो रही है॥ १२८॥

बर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन हरसहिं।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहसहिं॥ १२९॥
लोक बेद बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर।
कन्या दान सँकलप कीन्ह धरनीधर॥ १३०॥

सब लोग दुलहा-दुलहिनको देखकर मन-ही-मन प्रफुल्लित होते हैं। शाखोच्चारके समय सब देवता और मुनिलोग हँसने लगे॥ १२९॥ फिर पर्वतराज हिमवान्‌ने सब प्रकारकी लौकिक-वैदिक विधियोंको करके हाथमें जल और कुश लिया तथा कन्यादानका संकल्प किया॥ १३०॥

पूजे कुल गुर देव कलसु सिल सुभ घरी।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी॥ १३१॥
बंदन बंदि ग्रंथि बिधि करि धुव देखेउ।
भा बिबाह सब कहहिं जनम फल पेखेउ॥ १३२॥

कुलगुरु और कुलदेवताओंका पूजन किया गया। फिर उस शुभ घरीमें कलश और शिलाका पूजन किया गया। [तत्पश्चात्] लावा-विधान (जिसमें कन्याका भाई कन्याकी गोदमें धानका लावा भरता है) और होम-विधान होकर फिर भाँवरें पड़ीं॥ १३१॥ [इसके अनन्तर] वधूकी माँगमें सिन्दूर

भरनेकी रीति कर ग्रन्थिबन्धन हुआ और फिर ध्रुवका दर्शन किया गया। तब सब लोग कहने लगे कि विवाह सम्पन्न हो गया और हमलोगोंने जन्म लेनेका फल अपनी आँखोंसे देख लिया॥ १३२॥

पेखेउ जनम फलु भा बिबाह उछाह उमगहि दस दिसा।
नीसान गान प्रसूत झरि तुलसी सुहावनि सो निसा॥
दाइज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पिआरी पेव की॥ १५॥

इस प्रकार सभीने अपना जन्मफल देखा। विवाह हो गया और दसों दिशाओंमें आनन्द उमड़ पड़ा। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि नगारोंके घोष, गानकी ध्वनि और फूलोंकी वर्षासे वह रात्रि सुहावनी हो गयी। पर्वतराज हिमवान्‌ने वस्त्र, मणियाँ, गौ, धन, हाथी, घोड़े, दास, दासियाँ—जो कुछ भी गिरिराजको प्रिय थे, वे सभी प्रेमपूर्वक दहेजमें दिये॥ १५॥

बहुरि बराती मुदित चले जनवासहि।
दूलह दुलहिन गे तब हास-अवासहि॥ १३३॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ।
करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ॥ १३४॥

फिर बरातीलोग तो जनवासेको चले गये और दूल्हा-दुलहिन कोहवरमें गये॥ १३३॥ उस समय मैनाने उनका द्वार रोककर कौतुक किया और शिव-पार्वतीने लहकौरिकी रीति करके उसे बड़ा सुख दिया॥ १३४॥

जुआ खेलावत गारि देहिं गिरि नारिहि।
आपनि ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि॥ १३५॥
सखी सुआसिनि सासु पाउ सुख सब बिधि।
जनवासेहि बर चलेउ सकल मंगल निधि॥ १३६॥

जुआ खेलाते समय सब स्त्रियाँ हिमाचलपत्नी मैनाको गाली गाती हैं। शिवजी अपनी ओर देखकर विशेष आनन्दित होते हैं [कि हमारे तो माता है ही नहीं, गाली किसको देंगी]॥ १३५॥ सखियों, सुआसिनियों और सास सभीने सब प्रकार सुख प्राप्त किया। फिर सब मंगलोंके निधान दूल्हा श्रीमहादेवजी जनवासेको चले॥ १३६॥

भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर।
बैठाए गिरिराज धरम धरनि धुर॥ १३७॥
परुसन लगे सुआर बिबुध जन जेवहिं।
देहिं गारि बर नारि मोद मन भेवहिं॥ १३८॥

तदनन्तर सब देवताओंको बुलाकर जेवनार हुई। धर्म और पृथ्वीको धारण करनेवाले गिरिराजने सबको बिठाया॥ १३७॥ सुआर (सूपकार) परोसने लगे और देवतालोग जीमने लगे। उस समय सुन्दरी स्त्रियाँ गाली गाने लगीं और मनको आनन्दमें डुबोने लगीं॥ १३८॥

करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह।
जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह॥ १३९॥
भूधर भोरु बिदा कर साज सजायउ।
चले देव सजि जान निसान बजायउ॥ १४०॥

गुणीलोग शहनाइयोंपर सुमंगल गान करने लगे, विष्णुभगवान् और ब्रह्माजी अपने भाई (सजातीय) समस्त देवताओंके साथ भोजन करके चले॥ १३९॥ पर्वतराज हिमवान्ने प्रातःकाल होते ही विदाका सामान तैयार किया और देवतालोग रथोंको सजाकर नगारे बजाते हुए चल दिये॥ १४०॥

सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि।
कीन्ह बड़ाई बिनय सनेह सुहावनि॥ १४१॥
गहि सिव पद कह सासु बिनय मृदु मानबि।
गौरि सजीवन मूरि मोरि जियँ जानबि॥ १४२॥

सभी देवताओंका सम्मान करके उन्हें पहिरावनी दी और उनकी विनय एवं स्नेहसे सुहावनी बड़ाई की॥ १४१॥ फिर सासने शिवजीके चरणोंको पकड़कर कहा कि 'हमारी एक विनीत प्रार्थना मानिये—पार्वती मेरे जीवनकी मूल है ऐसा जानियेगा'॥ १४२॥

भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं॥ १४३॥
उमा मातु मुख निरखि नैन जल मोचहिं।
नारि जनमु जग जाय सखी कहि सोचहिं॥ १४४॥

वे एक बार मिलकर विदा कर देती हैं और फिर मिलकर पहुँचाने जाती हैं, मानो हालकी बियाई हुई गाय हुँकार भर-भरकर दौड़ती हो ॥ १४३ ॥ पार्वतीजी माताके मुखको देखकर नेत्रोंसे जल बहा रही हैं और सखियाँ 'संसारमें स्त्रीका जन्म ही वृथा है' यों कहकर सोच करती हैं॥ १४४ ॥

भेंटि उमहि गिरिराज सहित सुत परिजन।
बहुत भाँति समुझाइ फिरे बिलखित मन॥ १४५ ॥
संकर गौरि समेत गए कैलासहि।
नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहि॥ १४६ ॥

गिरिराज हिमवान् पुत्र और परिजनोंसहित पार्वतीजीसे मिलकर और उन्हें बहुत प्रकार समझा-बुझाकर दुःखी मनसे लौटे ॥ १४५ ॥ फिर शिवजी पार्वतीजीके सहित कैलास गये और देवतालोग प्रणाम करके अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ १४६ ॥

उमा महेस बिआह उछाह भुवन भरे।
सब के सकल मनोरथ बिधि पूरन करे॥ १४७॥
प्रेम पाट पटडोरि गौरि हर गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कबि मति मृगलोचनि॥ १४८ ॥

पार्वतीजी और शिवजीके विवाहके आनन्दसे सारे भुवन भर गये, विधाताने सबके सम्पूर्ण मनोरथोंको पूरा कर दिया ॥ १४७ ॥ प्रेमरूप रेशमके रेशमी तागेमें कविकी बुद्धिरूपी मृगनयनी कामिनीने यह श्रीपार्वती और शंकरके गुणगणरूपी मणियोंसे मंगलमय हार गूँथा है॥ १४८ ॥

मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो।
उर धरहुँ जुबती जन बिलोकि तिलोक सोभा सार सो॥
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहै।
तुलसी उमा संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहै॥ १६ ॥

कविकी बुद्धिरूपी मृगनयनी चन्द्रवदनी स्त्रीने [उपर्युक्त] मणियोंके इस मंगलहारको रचा है, इसे भक्तोंकी बुद्धिरूपी स्त्रियाँ तीनों लोककी शोभाका सार समझकर धारण करें। जो लोग विवाहोत्सवादि मंगल-कृत्योंके समय इसका प्रेमसहित गान करेंगे, श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि वे श्रीशिव और पार्वतीजीके प्रसादसे मनको प्रिय लगनेवाला आनन्द प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥